प्रकाशक—
वैशाली-निकुञ्ज
मुजफ्फरपुर ।

प्रथम संस्करण
मूल्य १॥)
सजिल्द २)

मुद्रक—
युगेश्वर सिंह
बोसप्रेस मुजफ्फरपुर ।

समर्पण

अपने कवि-मित्र

पण्डित रामदेव शर्मा

को

इन कविताओं को लिखने में
जिनका बराबर साथ रहा है

—आरसी प्रसाद सिंह
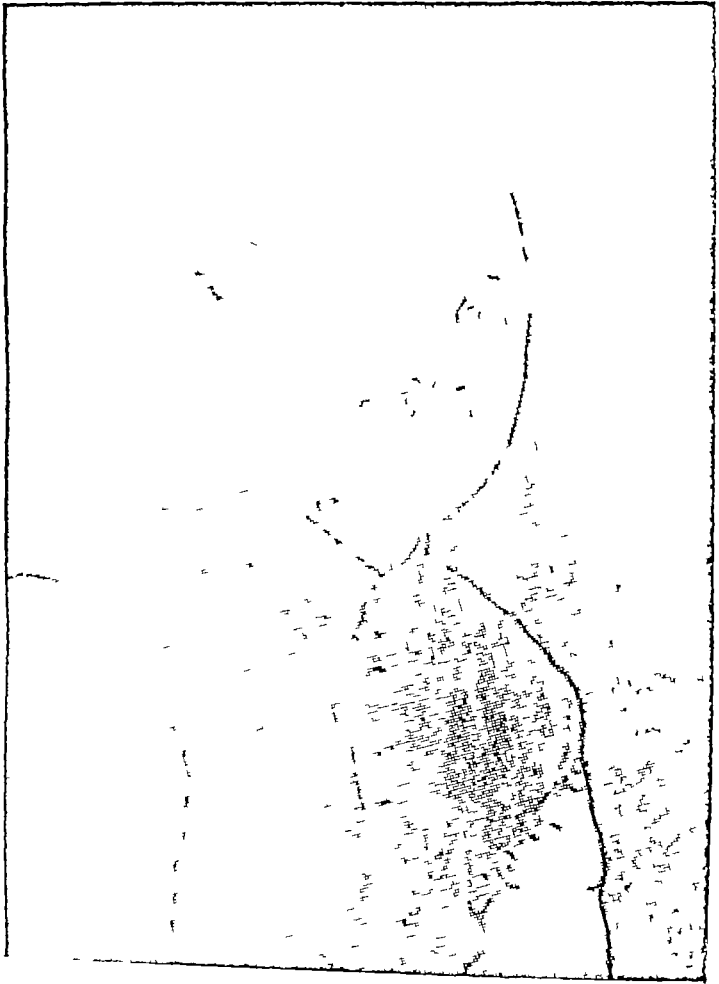
पं० रामदेव शर्मा

एक दृष्टि—

'नयी दिशा' में नवीनता तो है ही, एक निश्चित दिशा का निर्देश भी है। अगति, गति और प्रगति के तालों पर उठने-गिरनेवाले हमारे जीवन के अन्तर और वाह्य, दोनों में आज एक भीषण अविश्वास की भावना भर गई है, जिसके फलस्वरूप एक ओर यदि हमें समस्त संस्कृति, कला, धर्म, अर्थ, राजनीति और परम्परा का मूल्य क्षण-क्षण परिवर्तित होता हुआ दीखता है, तो दूसरी ओर हमारी अन्तर्वृत्तियों के अस्तित्व और उनकी अब तक की अभिव्यक्तियों के प्रति हमें अनास्था-सी होने लगी है। हमारी अन्तर्वृत्तियाँ हमारी वाह्य परिस्थितियों से ही अनुशासित होती हैं, इसे हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा। और तभी हम पाते हैं कि हमारी वाह्य परिस्थितियों की अस्तव्यस्ता और उनके न-कुछ-पन की भावना ने हमारी अन्तर्वृत्तियों पर एक गहरे अवसाद की छाया डाल दी है। Ezra Pound के शब्दों में आज के हमारे जीवन का रेखा-चित्र कुछ ऐसा ही दीख पड़ता है—

fortitude as never before,
frankness as never before,
disillusions as never told in the old days
hysterias, trench confessions,
laughter out of dead bellies

ऐसी व्यतिव्यस्तता में, जब जीवन स्वयं अपनी अब तक की धारणाओं को ध्वस्त कर रहा हो, संस्कृति अपने मानदंडों को तोड़कर नयी रेखाएँ खींच रही हो और बुद्धि अपने सूक्ष्म काँटे पर हृदय के रग-रेशे की तौल ले रही हो, कला एवं साहित्य की अब तक की मान्यताएँ भी, अपने को अक्षुण्ण बने रख पाती! गत महायुद्ध ने, विश्व-व्यापी रूपमें, कलाकारों की चेतना को वहिर्जगत की संत्रस्तता के कारण अन्तर्मुखी तो किया ही था,

बर्गसाँ, फ्रायड, युंग आदि के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों ने भी, अवचेतना के अतल गह्वर में गोता लगाकर व्यक्तिगत वाष्पाकुल संवेदन तथा आवेग के संचय की उसे प्रेरणा दी। फलस्वरूप, बहिर्जगत की शून्यता और रिक्तता से विक्षुब्ध युद्धोत्तरकालीन कलाकार, जब अपने स्तब्ध अन्तर्जगत में लौट कर, अपनी रचना के उपकरण ढूँढने लगा तो अनायास उसकी संवेदना पर वैयक्तिकता का गहरा रंग चढ गया और उसकी कल्पना बौद्धिकता के रंग में शराबोर हो उठी। New Signatures की भूमिका में Michael Roberts ने तत्कालीन कलाकारों की इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए लिखा था—"अपनी बाह्य परिस्थिति को घृणास्पद उपेक्षा की दृष्टि से देखनेवाला कवि, किसी स्वस्थ जीवन-दर्शन एवं निश्चित धारणाओं के अभाव में, साधारण जीवन से तटस्थ होता गया और ऐसी निष्क्रिय रचनाओं की सृष्टि करने लगा जो या तो अतिशय बौद्धिक थी या अत्यधिक वैधानिक (technical) थी। कवि के लिए ऐसी तटस्थता नितान्त घातक सिद्ध हुई।"

युद्धोत्तरकालीन हिन्दी कविता में छायावाद का विकास भी कुछ इसी प्रकार की परिस्थिति में, ऐसी ही प्रवृत्तियों को लेकर हुआ था। तत्कालीन भारतीय जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में नवीन चेतना की जो जागृति हुई, वह समसामयिक परिस्थिति की विषमता के कारण स्तब्ध-सी रह गई। परिणामत वस्तु-जगत से सर्वदा तटस्थ होकर कवियों की चेतना अन्तर्जगत की नीहारिका में अपनी असन्तुष्ट भावनाओं की रंगीन चित्रशाला सजाने में ही मग्न रहने लगी। किन्तु छायावाद-युग की जागृत चेतना और बाह्य परिस्थिति में सामंजस्यपूर्ण संतुलन के सर्वथा अभाव के कारण अतृप्ति, अवसाद और वस्तु-जगत की उपेक्षा की जो भावना उस युग की कविता में व्यक्त हुई, उसमें वस्तु और विधान, दोनों दृष्टियों से, रूढि और परम्परा के प्रति विद्रोह का भाव छिपा हुआ था। इसलिए द्विवेदी-युग की सभी साहित्यिक मान्यताओं को ध्वस्त करके, एक सर्वथा नूतन शैली—एक नवीन दृष्टिकोण—उपस्थित करने में

छायावाद पूर्णतया सफल हो सका। अतः यदि एक ओर उसमें संवेदना की विविधता और मार्मिक तीव्रता के दर्शन होते हैं, तो दूसरी ओर 'छन्दों की रुद्ध कारा' को तोड़कर गूँज उठनेवाली सागीतिक प्रभविष्णुता की ध्वनि सुनाई देती है। लेकिन यह सब कुछ होने पर भी, छायावाद की अन्तर्मुखी चेतना कुछ इतनी कुंठित थी कि वहिर्जगत के प्रति वह सर्वथा निष्क्रिय रह गई। उसमें उद्वेग तो था किन्तु प्रतिरोध और युयुत्सा का नितान्त अभाव था, अतृप्ति तो थी किन्तु स्वस्थ सृजनात्मक शक्ति की कमी थी। उसमें गति तो थी किन्तु वह अग्रगामी न होकर, प्रतिगामी बन गई।

छायावाद की अति वैयक्तिकता की निष्क्रियता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिन्दी में जो नवीन काव्यधारा प्रवाहित हुई, 'नयी दिशा' उसकी एक प्रवृत्ति की ओर सकेत करती है। अन्तर्जगत और वहिर्जगत को यदि हम एक सीधी रेखा के दो छोर मान लें, तो हम पाएँगे कि अन्तर्मुखी-छायावादी कवि जब वहिर्जगत से सर्वदा तटस्थ होकर, अन्तर्जगत की ओर आकृष्ट हुआ तब वह अन्तर्जगत के केन्द्र-विन्दु में ही उलझा नहीं रह गया, क्योंकि उसकी भीषण अतृप्ति की पूर्ति के लिए विराट अन्तर्जगत की परिधि भी सकुचित-सी थी। अत उस केन्द्र-विन्दु से एक लम्ब रेखा में वह ऊपर की ओर उठने लगा। अपनी इस ऊर्ध्व-गति में उसने साध्य-गगन में अपने जीवन का प्रतिविंब पाया, हीरक-से तारों में उसे अपनी अतृप्ति का बोध हुआ, और किंचित् और ऊपर उठ कर, शून्य की निस्पन्दता में, अनन्त सत्ता पर अपनी सान्त विह्वलता को आरोपित कर, वह शेष हो गया। इधर वहिर्जगत बड़ी तीव्रता के साथ अग्रगामी हो रहा था और उधर अन्तर्मुखी छायावादी कवि क्षण-क्षण वायव्य होता जा रहा था। परिणाम-स्वरूप, प्रतिक्रिया के रूप में जब प्रत्यावर्त्तन का अवसर आया, तब उस कवि को वस्तु-जगत के धरातल पर एकबारगी उतर आने के लिए, कोई निश्चित मार्ग न मिल सका। यही कारण है कि छायावाद के बाद हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों में इतनी विविधता और वैषम्य दीख पड़ता है।

छायावाद-युग में काव्य के जो उपकरण जुटाए गए थे, अभिव्यक्ति और विचारों के जो मानदंड स्थिर किए गए थे, सौन्दर्यानुभूति और संवेदना की जो रूप-रेखा मान्य हो चुकी थी, वह सब इस नये युग में टूटता हुआ नज़र आने लगा। 'आज असुन्दर लगते सुन्दर' में पिछले युग की सौन्दर्यानुभूति का मूल्यांकन ही परिवर्तित होता हुआ दीख पड़ा और 'प्रिय पीड़ित शोषित जन' में अन्तर्जगत की अपेक्षा बहिर्जगत के प्रति तीव्र आसक्ति की भावना दीख पड़ी। और, चूँकि छायावादी काव्य-दर्शन बहुत अधिक सूक्ष्म और वायव्य हो चला था, क्रिया-प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति के अनुसार,

"सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली-पीली।"

जैसी तुच्छ वस्तुओं में भी महत्व और सौन्दर्य की अनुभूति की जाने लगी। वस्तुत: यह परिवर्त्तन नितान्त स्वाभाविक ही है। युद्धोत्तरकालीन अंग्रेजी कविता में भी इलियट आदि की तीव्र अवसाद-भावना और अति-बौद्धिकता की प्रतिक्रिया के कारण ऑडेन-स्पेंडर-डे लेविस का जो काव्य-दर्शन उपस्थित हुआ, उसमें भी इसी प्रकार 'तुच्छता में गौरव' (significance in trifles) के दर्शन होते हैं। ऑडेन ने अपनी काव्यगत मान्यताओं की स्थापना करते हुए कहा था—"Poetry can be every thing that we remember, no matter how trivial. the mark on the wall, the joke at the luncheon, wood games.... these are equally the subject of poetry. We shall do poetry a great disservice if we confine it only to the major experiences of life" और, इस धारणा की स्वीकृति तो उन्हें इलियट के 'A Cooking Egg' से भी मिल चुकी थी जिसके वातावरण में

Views of the Oxford College
Lay on the table, with the knitting

Supported on the mantelpiece
An invitation to the Dance.

के हमे दर्शन होते हैं। हिन्दी के अधिकांश कवि जब अपनी अवसादपूर्ण वैयक्तिकता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वहिर्जगत को ओर आकृष्ट हुए, तब न केवल छायावादी काव्य-वस्तु ही उन्हे जर्जर जान पडी, वरन् उस युग का समस्त जीवन-दर्शन उनके लिए 'पलायमान शुतुर्मुग' की बेबसी से कुछ अधिक महत्व नही रखता था। उधर मार्क्सवादी भौतिकवाद (dialectical materialism) के प्रभाव से जो नवीन जीवन-दर्शन उपस्थित हो रहा था वह कुछ इतना सजीव और आकर्षक था कि युद्धोत्तरकालीन अंग्रेजी कवियो की तरह, वे अपने 'पारनेशियन शिखर' (Parnassian heights) से उतरकर एकबारगी वर्ग-संघर्ष एवं सर्वहारा-सतह पर जा पहुँचे। 'भैंसागाडी', 'बोबियों का नृत्य', 'कुकुरमुत्ता', आदि कविताएँ इसी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। 'तुच्छता मे गौरव'—दर्शन की प्रवृत्ति तो इन कविताओं मे है ही, वे आधुनिक वर्ग-सघर्ष एवं जीवन की संश्लिष्ट जटिलता की भावनाओ से भी ओत-प्रोत हैं। 'सेंधों का ढेला सकरपाला हुआ' में भी हमे इसी प्रवृत्ति का सूक्ष्म सकेत मिलता है।

प्रगतिवाद के नाम से आधुनिक हिन्दी कविता की जो नवीन धारा प्रवाहित हुई है, वह छायावाद की बौद्धिक प्रतिक्रिया-मात्र है। इसलिए प्रगतिवाद का विधान (Pattern) और उसकी ध्वनि (Rhythm) दोनों गतानुगतिक हैं। अन्तर्मुखी की अपेक्षा केवल वहिर्मुखी दृष्टिकोण को अपना लेने से ही किसी नवीन काव्य-दर्शन की अवतारणा नहीं हो जाती। यदि छायावाद की वाणी हृदय की रागात्मक वृत्तियों की एक-स्वर झंकार से मुखरित थी, तो प्रगतिवाद की वाणी बौद्धिक सहानुभूति के बोझ से बोझिल है। हृदय जब ऊपर उठे और साथ ही मस्तिष्क जब नीचे उतर कर उससे मिल पाए, तभी कठ की वाणी, युग-वाणी की संज्ञा पा सकती है। छायावाद और प्रगतिवाद, दोनों इस दृष्टि से एकागी ही हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता की चित्रशाला में 'नयी दिशा' को कहाँ उपस्थित किया जाय? श्री आरसीप्रसाद सिंह आधुनिक हिन्दी काव्य-क्षेत्र के ऐसे प्रतिनिधि हैं जिनका मूल्यांकन आधुनिक काव्य के किसी एक निश्चित मानदंड के सहारे नहीं किया जा सकता। अगर उनमें कीट्स की वासना है, शेली का विद्रोह है, स्विनबर्न का विक्षोभ है तो उनमें टैगोर की कल्पना, पन्त की कोमलता और निराला की वैधानिक विविधता भी है। अगर उनमें छायावाद की तीव्र अन्तर्मुखी चेतना का उज्वल प्रकाश है, तो उनमें प्रगतिवाद की बहिर्मुखी प्रवृत्ति की जगमगाहट भी है। भावात्मक एव बौद्धिक और गतानुगतिक एवं प्रयोगात्मक, उनकी काव्य-रचनाओं में इतनी विविधता—और फलत: इतना वैषम्य—है, कि उनमें किसी निश्चित जीवन-दर्शन के विकास की रूप-रेखा स्पष्ट नहीं की जा सकती। आज के विशिष्टीकरण के युग मे, जब हम प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन किसी निश्चित धारणा, किन्हीं विशेष मान्यताओं के आधार पर किया करते हैं—यहाँ तक कि जब हमारे हास्य और रुदन का मूल्य भी किसी खास 'पैटर्न और डिजाइन' के सहारे आँका जाता है—तब किसी आधुनिक कवि को किसी निश्चित जीवन-दर्शन की रेखाओं मे बँधता हुआ न पाकर, हम उससे क्षुब्ध हो सकते हैं। किन्तु हममे इतनी सहिष्णुता भी तो होनी चाहिए कि हम देखें कि धारणाओं की अनिश्चितता, मान्यताओं की अस्तव्यस्तता, एव प्रवृत्तियों की द्वन्द्वात्मकता के इस युग-मे, उसीके अनुरूप किसी संश्लिष्ट काव्य-दर्शन की भी तो संभावना हो सकती है!

'कलापी' के कवि को 'नयी दिशा' मे पहचानना कठिन है। आरसी तो दोनों की एक है, किन्तु प्रतिबिंब सर्वथा भिन्न हैं। 'कलापी' की 'कवि की मृत्यु' मे जिस तीव्र द्वन्द्व और अतृप्ति के हमे दर्शन हुए थे, 'नयी दिशा' की 'पूनो' में उसकी झनझनाहट की अपेक्षा कोमल झंकार ही सुनाई देती है। लगता है, जैसे धारा के प्रचंड प्रवाह मे जो भीषण आवर्त्त थे, वे अब मुग्ध लहरियों मे परिणत हो गए हों। 'कलापी' मे कल्पना की चंचलता

है, तो 'नयी दिशा' में अनुभूति की मार्मिकता है, उसमें वासना की विवृति है, तो इसमें भावना का प्रशमन है।

'नयी दिशा' आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति का, कुछ अंशों में सफल प्रतिनिधित्व करती है—'कुछ अंशों में' इसीलिए कि इसके रचयिता का अपना एक व्यक्तित्व है जो प्रचलित परिपाटियों की संकीर्णताओं और उनके अनुकरण से कहीं ऊँचा है। इस संग्रह की 'गडेरिया', 'उल्लू', 'पेपरवेट' और 'गधा' शीर्षक कविताएँ 'तुच्छता में गौरव'-दर्शन की भावना से अनुप्राणित हैं। किन्तु, इनमें और 'भैंगागाडी', 'कुकुरमुत्ता' 'तेल की पकौड़ियाँ' आदि कविताओं में केवल वस्तु-व्यंजना की दृष्टि से ही अन्तर नहीं है, उनमें विचार-धारा का भी अन्तर है। जहाँ पिछले वर्ग की कविताओं पर आधुनिक वर्ग-चेतना की जागृति एवं गतानुगतिक साहित्यिक मान्यताओं की प्रतिक्रिया की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है, वहाँ 'नयी दिशा' की इन कविताओं में इनके रचयिता की स्वतंत्र धारणाओं की विविधता के दर्शन होते हैं। इसीलिए 'गडेरिया' में De La Mare की Nod एवं 'गधा' में Chesterton की 'The Donkey' शीर्षक कविताओं की भावनाओं को खोजने का प्रयास भी सर्वथा असंगत है, क्योंकि न तो Nod की भाँति 'नयी दिशा' का 'गडेरिया' 'Rest, rest and rest again' की शान्ति से अभिभूत है और न 'The Donkey' की तरह इसका 'गधा' अपने को इतना महत्वपूर्ण समझता है कि उसका जन्म ऐसे समय में हुआ था—

"When fishes flew and forests walked
And figs grew upon thorn,"

'गडेरिया' प्रतीक-काव्य की एक विचित्र रचना है। चन्द्रमा, तारे, आकाश और सूर्य, क्रमशः गडेरिये, भेड़, चरागाह और भेड़िये के प्रतीक के रूप में लिए गए हैं। निस्सन्देह यह कल्पना कुछ विचित्र-सी लगती है। किन्तु, यदि एक ओर यह काल्पनिक तरलता है, तो दूसरी ओर 'गधा' में कवि के क्षुब्ध विद्रोह की ध्वनि भी सुनाई देती है—

ज्यादा गुनहगार है शोषक
से शोषित होनेवाला !
गुनहगार है ज्यादा शासक
से शासित होनेवाला !

इसी प्रकार 'उलूक' और 'पेपरवेट' मे लक्ष्मी के वर पुत्रो और पत्थर के टुकडो पर देवत्व आरोपित करने की भावना पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है।

'नयी दिशा' की सबसे बडी विशेषता है, उसकी कुछ कविताओं मे अनुभूति-विपर्यय की भावना। प्रेम की उत्कंठा, विरह की तन्मयता, उपेक्षा का दंशन, और आकाक्षाओ के उत्पीडन के गीत तो इतने अधिक गाए जा चुके हैं कि समस्त छायायुगीन कविता 'अभिलाषाओं की करवट' और 'भीगी पलको के लगने' की भावना से ओत-प्रोत है। किन्तु 'आज जहर पी-पीकर' जब कवि की 'मस्ती सँभल रही है', तब 'आज यदि तुम पास होती !' के विपरीत यह कल्पना कवि के मन मे उठती हुई दिखाई देती है—

कितना अच्छा होता वह दिन,
जब तू मेरे पास न होती !

और, इस कल्पना के उठते ही, कवि अपनी भावनाओ को कार्य-रूप मे परिणत करने का सकल्प भी कर लेता है—

निश्चय तुझे करूँगा अपनी आँखो से मै दूर !

किन्तु, कठोरता की यही पराकाष्ठा नहीं है। आगे चलकर तो कवि इतना असहिष्णु और unchivalerous हो उठता है कि उसे ऐसा कहने मे भी संकोच नहीं होता—

किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मैं प्यार ?

अनुभूति-विपर्यय की यह भावना तीव्रतम रूप मे दीख पडती ह इस

संग्रह की एक कविता में जिसका शीर्षक है—'आओ, मेरे आगे बैठो !' इस पंक्ति मे एक आग्रह है, एक आकुल अनुरोध है, जो विविध भावनाओं को जागृत कर देता है। किन्तु, दूसरी ही पंक्ति मे कुंडली मार कर फन फैलाए हुई काली नागिन की मुद्रा मे बैठनेवाली की कल्पना रोमाच उत्पन्न का देनो है। लेकिन, कवि का आग्रह तो और प्रबल हो उठता है—

आओ, बैठो मेरे आगे !
जैसे बैठी होती बाघिन,
बहुत दिनों की भूखी बाघिन।

भूखी बाघिन, जो 'अब झपटे मानो, अब निगले !' किन्तु, कवि को ऐसी विभीषिकामयी आकृति से रोमाच नही होता वरन् वह तो कहता है—

मैं तुम्हें देखता रह जाता हूँ,
और जरा-सा हँस देता हूँ !

'यह कैसा दर्शन है ? आत्म-घात है ?' और फिर भी ओठों पर मुस्किराहट। लगता है जैसे स्व-पीडन में भी कवि को सुखानुभूति होती है। निस्सन्देह, हिन्दी काव्य की भाव-धारा मे यह एक नयी लहर है !

'नयी दिशा' के इन गीनो से स्पष्टत: यह ध्वनि निकलती है कि कवि असाधारण मानसिक स्थिति में है। अपने ऊपर उसका अखंड विश्वास है—ऐसा विश्वास जो टूट जायगा, किन्तु झुकेगा नहीं। इन गीतों में वय:सन्धि का भावातिरेक नहीं, वयस्कता की कठोरता है। किन्तु, साथ ही द्वन्द्वात्मक मानसिक स्थिति का आरोह-अवरोह भी है।

'नयी दिशा' में कवि एक ओर यदि 'द्रष्टा' बनकर कहता है—

'मैं द्रष्टा हूँ, द्रष्टा केवल !'

तो दूसरी ओर उसकी सृजनात्मक क्षमता 'स्रष्टा' के रूप मे प्रकट होती है—

मैं स्रष्टा हूँ जहाँ, द्विधा में
वहाँ विधाता भी पड़ जाता !

द्रष्टा और स्रष्टा के दर्शन और सृजन का संतुलन 'नयी दिशा' की स्वस्थता और प्रौढ़ता की परिणति है। निःसंग जीवन-दर्शन एवं निर्विकार सृजन का सामंजस्य ही हमें साहित्य-सृष्टि के लिए स्वस्थ प्रेरणा दे सकता है। आधुनिक हिन्दी कविता की प्रगति में 'नयी दिशा' इस दृष्टि से निस्सन्देह एक नयी दिशा की ओर संकेत करती है।

हिन्दी-विभाग,
जी० बी० बी० कॉलेज,
मुजफ्फरपुर।
१५ दिसम्बर, १९४४।

—नवलकिशोर गौड़

नयीदिशा

विषय-सूची

धारा बदल रही है, देखो !

धारा बदल रही है, देखो !

पल भर जिसको चैन नहीं थी,
देखे बिना, विकल-सी रहती;
अब आँसू की दो बूंदों से
तबियत बहल रही है, देखो !

बहुत दिनो तक पड़ा रहा मैं
रख अपनी छाती पर पत्थर !
अकस्मात् अब पत्थर की भी
छाती पिघल रही है, देखो !

मैने था जब पास बुलाया,
भाग गयी थी वह नफरत से;
पाँव चूमने को मेरे अब
दुनिया मचल रही है, देखो !

मिले न थे जब तक हम दोनों,
अकुलाहट थी छायी मन में;
अब जो घड़ी मिलन की आयी;
हसरत निकल रही है, देखो।

सूखे थे जब होंठ, जिन्दगी
तरस रही थी एक घूट को।
आज ज़हर पी-पी कर मेरी
मस्ती सँभल रही है, देखो।

जीवन की एक रात

जीवन की एक रात चैन से गुजर गयी।
समझा मैं, पूनो की चाँदनी उमड़ गयी।

उस दिन हम दोनों में था खयाल किसको!
तीर से पुकारता अनन्त काल किस को?
मौजों में खेलते, बहाते और बहते हम,
व्यस्त रहे सुनते कुछ, आपस में कहते हम।
सँभले जब देर बाद,

केवल तब एक याद,
मेरा यह रूप देख मृत्यु भी सिहर गयी।

फिर तो ये बाकी दिन, काले, अँधियाले।
खाली हों, हसरत के टूटे ज्यो प्याले!
और कहाँ जादू वह, मिन्नत की घड़ियाँ?
आँखो मे उड़ती थीं रस की फुलझड़ियाँ!
कल का पूर्णेन्दु-हास
आज का दिन है उदास,
आयी थी साँस, मुझे लेने को ठहर गयी।

लगता है आज मुझे, जैसे वह सपना था;
लगता है, जैसे वह—आँखो का भ्रम था;
यदि नहीं—
तो फिर वह अन्य कौन अपना था?
मान लिया जिसको जी चाहा, मन मेरा!
जो कुछ था ज्ञान, प्राण;
सब तो कर चुका दान!
कोई क्या नयी बात अब भी है रह गयी?

जाने, क्यों अब नहीं तुम्हारी

जाने, क्यो अब नहीं तुम्हारी
कभी याद भी मुझ को आती ?

घिर अतीत के अन्धकार से
तुम जो मुझे पुकार रहे हो!
मेरी स्मरण-शक्ति को युग से
बारम्बार उभाड़ रहे हो!

अब तो प्रिय, आवाज एक भी
यहाँ तुम्हारी पहुँच न पाती!

यह जो तुम उपहार भेजते
मेरे पास प्रेम का प्रतिक्षण;
पुष्प-गन्ध, द्राक्षा-रस, परिमल,
अङ्गराग, ज्योत्स्ना के मधुकण!

गिरते तरु से पत्र, तुम्हारी
व्याकुलता मुझको न सताती!

शत-शत मिलन-यामिनी मधु की
हार गयी है मुझे मना कर!
प्रणय-दूत अज्ञात तुम्हारे
लौट चुके है कितने आकर!

हँस-हँस कर वसन्त रह जाता,
सिसक-सिसक वर्षा रह जाती!

आज क्या मेरी तरह तू भी

आज क्या मेरी तरह तू भी
अकेला हो गया है? चाँद,
ओ अभागे चाँद!

बोलता तू क्यो नही?
उन्माद - सा क्यो छा गया है?
लोग हँसते, आ गया फिर
कौन यह पागल नया है?
रात के पिछले पहर में,
याद की उठती लहर मे,
प्राण बहते जा रहे
चिनगारियो की जव लहर मे,—

क्या न था तू ही? गली में
जो किसी की रो गया है, चाँद!
ओ अभागे चाँद!

वन गयी है वेदना तेरी जगत के गान;
शोक तेरे हो गये है विश्व की मुस्कान!
भर्त्सना ससार की, कुत्सा, घृणा, अपमान,
तुम उठा कर पी गये इतना कलक महान्!
लाज से क्यों मुँह छिपाता,

बादलों में तू समाता,
जा रहा चुपचाप क्यों है
आज अपने को मिटाता।
मत जगा, अरमान गहरी
नींद में जो सो गया है, चाँद !
ओ अभागे चाँद !

इतने बड़े आकाश में तेरा नहीं क्या वास ?
इतने बड़े ब्रह्माण्ड में कोई न तेरे पास !
एक दिन थी पूर्णिमा की माधुरी, उल्लास ;
एक दिन है आज यह लाञ्छन, पतन, परिहास !

कहता नहीं तू जड़ हुआ क्या ?
प्रेम का वह वर हुआ क्या ?
हिलता नहीं, डुलता नहीं ?
सुनता नहीं, पत्थर हुआ क्या ?
बोल, क्या उस पार तेरा भी
कहीं कुछ खो गया है ? चाँद !
ओ अभागे चाँद !

किसने कहा कि सुन्दरि, तुम को

किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मै प्यार ?
किसने कहा कि हम दोनो में गोपनीय व्यवहार ?

तुम सुन्दर हो, मैंने जाना,
आकर्षण है, यह भी माना।
लेकिन, तुमसे प्रेम ? और मै
करूँ ? असत्य, असम्भव, ना-ना।

कभी मान सकता हूँ मै क्या इतनी जल्दी हार ?
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मैं प्यार ?

नर-नारी मे परिचय, मैत्री;
यह भी कोई बात नयी है ?
बहकाया है किसने तुम को ?
मारी किसकी अक्ल गयी है ?

यों तो दुश्मन से भी आँखें हो जाती है चार
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मैं प्यार ?

ले लेता हूँ भूले-भटके
कभी तुम्हारा नाम।
बन जाता है कभी तुम्हारा
मुझ से कोई काम !

दुनिया तो यों-ही करती रहती है तिल का ताड़ ।
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मै प्यार ?

बादलो में तू समाता,
जा रहा चुपचाप क्यों है
आज अपने को मिटाता।
मत जगा, अरमान गहरी
नींद में जो सो गया है, चाँद!
ओ अभागे चाँद!

इतने बड़े आकाश में तेरा नही क्या वास?
इतने बड़े ब्रह्माण्ड मे कोई न तेरे पास!
एक दिन थी पूर्णिमा की माधुरी, उल्लास,
एक दिन है आज यह लाञ्छन, पतन, परिहास!
कहता नहीं तू जड हुआ क्या?
प्रेम का वह वर हुआ क्या?
हिलता नही, डुलता नही?
सुनता नहीं, पत्थर हुआ क्या?
बोल, क्या उस पार तेरा भी
कही कुछ खो गया है? चाँद!
ओ अभागे चाँद!

किसने कहा कि सुन्दरि, तुम को

किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मै प्यार ?
किसने कहा कि हम दोनो में गोपनीय व्यवहार ?

तुम सुन्दर हो, मैंने जाना,
आकर्षण. है, यह भी माना !
लेकिन, तुमसे प्रेम ? और मै
करूँ ? असत्य, असम्भव, ना-ना !

कभी मान सकता हूँ मै क्या इतनी जल्दी हार ?
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मै प्यार ?

नर-नारी मे परिचय, मैत्री;
यह भी कोई बात नयी है ?
बहकाया है किसने तुम को ?
मारी किसकी अक्ल गयी है ?

यों तो दुश्मन से भी आँखें हो जाती हैं चार
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मै प्यार ?

ले लेता हूँ भूले - भटके
कभी तुम्हारा नाम !
बन जाता है कभी तुम्हारा
मुझ से कोई काम !

दुनिया तो यों-ही करती रहती है तिल का ताड़ !
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मै प्यार ?

तुमने भी क्या समझ लिया
मुझको इतना कमजोर ?
सच बोलो, क्या कभी खिँची थीं
तुम भी मेरी ओर ?
वह तो थी तकरार, जिसे तुम कहती हो खिलवाड़ ?
किसने कहा कि सुन्दरि, तुमको करता हूँ मैं प्यार ?

═══

तू क्यों इतना परीशान है

तू क्यों इतना परीशान है ?
क्या मुझ पर गुस्सा आता है ?

आता है, तो आने भी दे;
प्यार गया, तो जाने भी दे !
मुट्ठी में क्यो बाँध रहे हो ?
बिजली को गिर जाने भी दे !

मैं भी देखूं, कितना दम है !
तू क्यों इतना झुँझलाता है ?

मैं अपना अपराध मानता;
तेरे दिल का राज जानता !

ये जो भौहे तनी हुई हैं,
क्या मै इनको न पहचानता ?

मै तो तुझे भूल भी जाऊँ,
पर, खयाल आही जाता है !

लगता है जैसे हम दोनों

लगता है, जैसे हम दोनों कही मिले हों दूर;

दूर कहीं अज्ञात स्थान जो अद्भुत एक अगोचर ;
दूर कही, निस्सीम काल की सीमा से भी बाहर !
प्रथम प्रेम की मदिरा पीकर दोनों ही थे चूर !

अच्छी तरह याद है हमको, वह क्षण अब भी याद ;
सिर्फ एक क्षण वह जीवन का, वह पहला उन्माद !
पहली वार हृदय था तड़पा, प्राण गये थे फूल !
हमने तुम्हें प्यार कर की थी सब से पहली भूल !
हमने अनुभव किया मर्म में एक चोट तत्काल !
दो तारों के छू जाने से हो जाता जो हाल !
भरी हुई थीं नयी उमंगे दोनों में भरपूर !

और आज भी तो लगता है, जैसे हम हों दूर ;
ज्यों की त्यो है बनी आज भी वे सीमाएं क्रूर !
कुछ ऐसा भी लगता, मानो हो आये प्राचीन ;
प्रायः जैसे वृद्धों का मन हो जाता है दीन !

बादल जब कभी उमड़ते हैं ;
नव - रस की वर्षा करते हैं ;
चढ़ इन्द्र धनुष के पंखो पर
जब मेरे स्वप्न विचरते हैं !

कभी-कभी विद्युत-प्रहर्ष में तुमको लेता देख ;
जैसे श्याम-कसौटी पर हो खिची कनक की रेख !
दोनों ने ही आत्म-समर्पण किया, हुये मजबूर !

निश्चय तुझे करूँगा अपनी

निश्चय तुझे करूँगा अपनी आँखों से मै दूर !

ये आँखें, जो तुझे देखने को
प्रतिक्षण अकुलाती हैं ;
एक घड़ी भी तुझे न पाकर
जो अधीर हो जाती है !

ये आँखे, जो रहती तेरे प्रेम-नशे मे चूर !
निश्चय तुझे करूँगा अपनी दुनिया से मै दूर !

यह दुनिया, जिस में तेरे
प्राणों का हाहाकार भरा है !
जिस की मिट्टी के कण-कण मे
तेरा मोहक प्यार भरा है !

यह दुनिया, जिस में तूने आनन्द किया भरपूर !
निश्चय, तुझे करूँगा अपने दिल से निश्चय दूर !

यह दिल, जो तुझको पाकर
फूला न समाया रहता है !
जो तेरी चितवन के जादू से
भरमाया रहता है !

यह दिल, जो तेरी माया से बना घमण्डी, क्रूर !
निश्चय. तुझे करूँगा निश्चय अपने मन से दूर !

एक चोट मै मन को दूँगा ;
दूँगा एक अभाव !
और मिटा मै दूँगा, जीवन पर
जो प्रबल प्रभाव !

मोहमयी, तू बार-बार यों मेरी ओर न घूर !
निश्चय तुझे करूँगा अपनी आँखों से मैं दूर !

जीवन की रात आज

जीवन की रात आज
आयी फिर मोहमयी।
माना, मैं हार गया
बाजी तू जीत गयी!

तुझको यदि यों ममत्व,
इसका है ज्ञात तत्व;
तू ही ले यह महत्त्व!
तू ही रह दिग्विजयी!

तेरा ही विजय-गीत,
गाऊँ मै भी पुनीत,
तेरे ही सुख से मै
आज सुखी, आज प्रीत!
जीवन में हार-जीत
कोई क्या बात नयी?
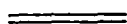
गड़ेरिया

रोज शाम को
आता लाखो भेडें लेकर
वह गडेरिया
उजले रँग का।
भेडे भी उसकी उजली ही ;
दूध से धुली,
खुली ,
सारी रात चराता नीली
चरागाह में
अपनी भेडे।
और सुबह को
रोज कही से आ जाता है
एक भेडिया।
एक एक कर
खा जाता सारी भेडो को।
और, अकेला
रो-रो कर, पीला पड कर,
घर हाय, लौट जाता गडेरिया।

पेपरवेट

मेरी टेबुल पर रक्खा जो
यह पत्थर का पेपरवेट ;
एक मित्र दे गये इसे थे
कागज में उस रोज लपेट

गोल-गोल पत्थर का टुकड़ा
लगता है कितना सुन्दर !
ताजे मखमल - सा सुफेद,
चिकना जैसे हो सँगमर्मर !

यों न किसी ने पूछा उससे,
और न वह कुछ बोला है !
वह पत्थर है, चुप है, उसने
कभी नहीं मुंह खोला है !

लेकिन, अगर गौर से देखोगे
तुम उसकी हरकत को !
तो पाओगे उसके पीछे
छिपी हुई तुम कुदरत को !

तुम्हें लगेगा नया नहीं वह,
दुनिया बहुत पुरानी है ;

उस छोटे-से पत्थर की
सचमुच दिलचस्प कहानी है !

तुम्हे कहेगा, किस प्रकार वह
पहले था कठोर चट्टान !
चोटी पर पहाड़ की लगता
था वह कितना उच्च, महान् !

सहसा तोड़ उसे डाला फिर
प्रखर नदी की धारा ने !
इधर उधर लग गयीं उसे
मौजी लहरें यों लुढकाने !

ज्यो-ज्यों नीचे उतरा, त्यों-त्यों
वह घिसता ही आया !
और अंत में घिसते-पिसते
यह स्वरूप है पाया !

जाने, कब यह चला वेग में ?
जानें, है यह कब का हाल ?
फिर भी, संशय नहीं कि होंगे
इस में लगे हजारों साल !

आज, यहाँ आते-आते यह
बना सुघड़-सा, गोल-मटोल;

कभी पला था शिला-खराड जो
प्रबल-नदी-प्रवाह में डोल !

लेकिन, यही खत्म हो जाती
है न कहानी यह मेरी,
लगी हुई है सागर-तटपर
यह जो बालू की ढेरी !

एक एक कण इसका कहता
वही पुरातन - सा इतिहास !
'मैं हूँ, वह चट्टान, बनाया
जिसको कभी काल ने ग्रास !'

पूजे जाते है मन्दिर मे
आज बने जो शालिग्राम ;
पसारी के थैले में जो
करते तौल - जोख का काम !

कही पडे पीपल के नीचे
करते है जो धर्म - धकेल !
नटखट लडके जिन्हे उठा कर
लाते और खेलते खेल !

बिछ जाते जो मौन तपस्वी
कहीं रेल की सडकों पर !

कभी पहाड़ों की चोटी पर
वे ही थे भारी पत्थर!

देखा है युग-युग को मिटते,
देखा मिटते मन्वन्तर!
पेपरवेट आज है यह जो
रक्खा मेरी टेबुल पर!

पूनो

लौट कर क्या आयगी फिर पूर्णिमा की रात?
ऐसी पूर्णिमा की रात?

आज मेरे प्राण मे ही भर गया आकाश!
आज कितना लग रहा है चॉद मेरे पास!
चॉद के मुख पर खिला है मुक्त मेरा हास!
और मुझको छू रहा है चॉद का निःश्वास!
चॉदनी चुपचाप आकर कर रही है बात!
कोई रस - भरी - सी बात!

व्योम है निस्तब्ध, है निःशब्द यह ससार!
वायु भी निस्पन्द, मानो हो गया लाचार!

सुन रहे हैं प्राण मेरे आज आँखे मूँद !
पी रहे हैं प्राण मेरे, चू रही जो बूँद !
देखते हैं नेत्र मेरे एकटक उस ओर,
आ रहा जिस ओर से मेरा चतुर चितचोर !
बज रहा है एक केवल, एक केवल तार !
उठ रही मेरे हृदय से ही मधुर झंकार !
गूँजती सब ओर जिसकी है सुरीली तान !
आज जैसे प्राण ही, सब मे भरे हो प्राण !
झिलमिलाते चार तारे, सिर्फ दो - ही - चार !
और उमड़ा आ रहा है ज्योति - पारावार !
द्वार हैं मन के खुले, सब वृत्तियाँ है बन्द !
आज इतना प्रेम, इतना छा रहा आनन्द !
जागता कोई न, दुनिया है पड़ी सुनसान ।
मौत के उस पार जाकर मिट गया तूफान !
आज कितनी शान्ति, जीवन में मनोरम शान्ति !
रश्मि बन बिखरी पड़ी मेरी प्रिया की कान्ति !
चाँदनी में आज सहसा खुल पडे हैं
प्राण के जलजात ;
मेरे प्राण के जलजात !
क्या न यों ही चॉदनी मुझको करेगी प्यार ?
चल न सकता आयु-भर क्या यह अथक अभिसार ?
सोचता हूँ मै यही फिर आज बारम्बार ;

इस विजय के अन्त में क्या बच रहेगी हार ?
आह, कितना क्षुद्र हूँ मैं ? क्षुद्र यह संसार !
मृत्यु की मेरी अमा मुझको रही ललकार—
'चार दिन की चाँदनी है, फिर अँधेरी रात !
आयेगी अँधेरी रात !'

इस तरह तैयार जाने के लिये क्यों हो गयी तू ?
इस तरह बेहोश-बेसुध बेपये क्यों हो गयी तू ?
इस तरह मुझको अकेला छोड़ भागी जा रही क्यों ?
इस तरह हर बात पर भी तू भला झुँझला रही क्यों ?
जानता हूँ, एक दिन तू जायगी ही—जायगी तू !
क्या पड़ी जल्दी, बता तू हर घड़ी अकुला रही क्यों !
क्या समझ कर कर रही यों मर्म पर आघात ?
मेरे मर्म पर आघात !

क्या न इतना भी तुझे मेरे लिये अवकाश ?
क्या बुझा सकती न मेरी एक छोटी प्यास ?
रुक न सकती और क्या तू एक क्षण भी हाय ?
काल के सम्मुख कुटिल तू भी विवश, निरुपाय ?
देखते ही देखते कुम्हला गया क्यों गात ?
तेरा चाँदनी का गात !

जा विलासिनि, देखता है व्योम तेरी राह !
और पूरी कर पिपासित प्राणियों की चाह !

देखती कब तक रहेगी हाय, मेरी ओर ?
सैकड़ों मुझ-से अभागे हैं, मुझे दे छोड़ !
जा भिखारिणि, माँग अब तू जा मुझी-सा भीख !
याद रक्खूँगा उसे, दी आज तूने सीख !
मैं अँधेरी रात में ही देख लूँगा स्वप्न ;
मै अँधेरी रात मे ही ढूँढ लूँगा ज्योति !
स्वप्न वह जिस पर टिका सौन्दर्य का ससार !
ज्योति वह जिससे छलकता प्रेम – पारावार ।
जा विनोदिनि, देख, होना चाहता ही प्रात !
ज्वालामय सुनहला प्रात !

नाराज

मुझ से मेरा मन नाराज !
कहता है, तूने कब मेरी
चिन्ता की ? कब पहचाना ?
एक बार भी तूने मेरा
कहा न माना, कब माना ?
कब तूने सुख दिया मुझे ?

कब मेरी प्रखर बुझायी प्यास ?
मैं मन को बहलाता, मुझ से

हो जाता है तन नाराज !
कहता है, तू ने कब मेरी
ममता की ? कुछ मोह किया ?
जब - जब मैने चाहा तुझ से
कुछ, तूने विद्रोह किया !
तू इतना निर्लज्ज कि तुझ से
मिटी न मेरी कुछ भी भूख !
मै मन को समझाता, लेकिन,

मुझ से जीवन भी नाराज !
कहता है, कब तू ने मेरी
माँगों पर कुछ ध्यान दिया ?
कभी एक भी पूरा तूने
क्या मेरा अरमान किया ?
सदा उपेक्षा ही-की मेरी,
मुझ से रहा सदैव विरक्त;
मै जीवन को कहता, मुझ से

दुनिया भी तो है नाराज !
कहती है, तू मायावी है;
सबको वश कर लेता है !

मीठी-मीठी बातें कह कर
यों ही धोखा देता है!
बोल अकामी, तूने किसका
किया आज तक क्या उपकार?
दुनिया को क्या कहूँ, देखता

मुझ से पत्थर भी नाराज!
उसकी भी है एक शिकायत,
जो वह मुझ से कहता है;
दूर-दूर क्यों खिँचा-खिँचा-सा,
उदासीन-सा रहता है?
मैं क्या उसे बताऊँ, मैंने
क्यों न उसे माना आराध्य?
पत्थर तो पत्थर ही, मुझ से

मेरा ईश्वर भी नाराज!
कहता है, मेरे लायक भी
तूने कोई काम किया?
कभी भूल कर भी क्या नास्तिक,
तूने मेरा नाम लिया?
जब-जब तुझे पुकारा मैंने,
तूने मेरा किया विरोध;
दुनिया से झुँझला कर तूने

मूर्ख ! लिया मुझ से प्रतिशोध !
मै सुनता हूँ, चुप रह जाता ;
सब तो सच ही कहते है !
मुझे नही मालूम कि मुझ से
भला कौन खुश रहते है !
इस विराट् पृथ्वी मे मुझ से
क्या न एक भी व्यक्ति प्रसन्न ?
क्या मै इतना हतभागा हूँ ?
क्या मै इतना आह, विपन्न ?
मुझे बनाने वाले, बोलो !
क्या मैं इतना तुच्छ नगण्य ?
मुझे मिटानेवाले, बोलो,
क्या मै इतना अधम, अधन्य ?
अगर नही, तो किसने तुमको
कहा कि मेरी याद करो !
मुझे बना कर खेल-खेल में
यों मुझको बर्बाद करो !
मै क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ मैं ?
मै किसके आगे रोऊँ ?
मुझे बता दो, किसके सम्मुख
जाकर नतमस्तक होऊँ ?
मैं ही केवल भार जगत का ?

क्या मै ही इतना दुर्बल ?
जो मुझसे मेरा जीवन है,
जीवन का प्रतिक्षण नाराज !

उल्लू
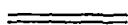
तेरी भी क्या उसी विधाताने
(कृपालु ने) रचना की है ?
जिसने सूरज, चाँद बनाया ;
मिट्टी मे सोना उपजाया !
आसमान मे आग लगाकर
जिसने अद्भुत् फूल खिलाया !
तेरी भी क्या उसी विधाता ने
(निष्ठुर ने) रचना की है ?
जिसने पैदा किया कमल को
घुटने भर दलदल, कीचड में ;
जिसने भरी जवानी दे दी
'बुधुआ की बेटी' के घर मे !

तेरी भी क्या उसी विधाता ने
(खूसट ने) रचना की है ?

जिसने अक्ल गधे को दी, है
जिसने दिया ऊँट को रूप;
इज्जत दी जिसने कुत्तो को,
जैसे माघ - मास की धूप!

देकर सुन्दर नाक - कान है
जिसने की हाथी की सृष्टि!
भाग्यवान्! क्या उसी विधाताने
दी तुझे गृद्ध की दृष्टि!
हे उलूक, परवाह नही कुछ;
अगर विधाता वाम हुआ!
चैन मौज मे दिन कटते है;
फुर्सत है—आराम हुआ!
सूर्य उगे या डूबे, चाहे,
चाँद रहे या मर जाये;
तुझे जरूरत क्या दुनिया से?
घर - घर विजली भर जाये!

यही सोच कर क्या लक्ष्मी ने
वाहन तुझे बनाया है!
अपने बूढे पति से बदला

ले क्या खूब छकाया है।
हे उलूक, कुछ फिक्र नहीं;
तू ही न अकेला आया है!
तेरे साथ भागवन्तों का
जग में मेला आया है!

काश कि तेरे आँखे होतीं,
और देख पाता तू भी!
अपने खँडहड की कीमत का
मर्म समझ पाता तू भी!
ये विशाल जो भवन बने है,
ऊँचे बड़े कँगूरे हैं!
इनमें तेरे ही भाई-बन्दो
के अड्डे, डेरे है!

तू मत सोच कि विधि के होते
सारे काम अधूरे हैं!
तुझ से बहुत आँख के अन्धे
और गांठ के पूरे हैं!
मरने को पानी से जिनके
भरे हुए दो चुल्लू है!
तू तो केवल उल्लू ही, ये
निरे काठ के उल्लू है!

सपने

ये सपने मुझको प्यारे है,
इन सपनों को तुम रहने दो !

ले सकते हो मेरा जीवन,
ले सकते हो मेरा धन ;
पर क्या पशु-बल का प्रयोग कर
ले सकते हो मेरा मन ?
वह मन, जिसमे स्वप्न विचरते,
मेघो से है क्रीडा करते,
इन्द्र धनुष की माला धारण
कर शिशु से किलकारी भरते ।
ये सपने बडे दुलारे है ।
बडे जतन से पाले है !
इन सपनो को तुम रहने दो !

कुछ सपने हैं जिनको
दुनिया में रूप मिला करते !
कुछ सपने हैं ऐसे भी, जो
यों ही हर रोज खिला करते;—
जैसे वन में फूल चमेली के;
रोज शाम को मुरझा जाते हैं
खिल कर !

फिर भी ये मेरे सपने हैं,
दिलके टुकड़े हैं, अपने हैं !
इसीलिये ये एकमात्र
आधार न क्या मेरे जीवन के ?
चुप रहते है कभी, और ये
देते कभी इशारे है !
ये सपने मुझको प्यारे है,
इन सपनो को तुम रहने दो !

इन सपनो को तुम देखोगे,—
कभी मचलते, कभी रूठते,
और कभी हँसते,
और कभी रोते भी !
कभी मौज मे आ जाते है,
और कभी मनमारे है !
ये सपने मुझको प्यारे है,
इन सपनो को तुम रहने दो !

मिट जायें ये, जैसे मिट जाया
करती है ओस धूप खिलने पर !
मिट जाये ये भले, सिन्धु में
जैसे गिर जाया करती है,
लहरें उठ कर !

फिर भी वे है अमर कि जितना
सब से बडा महात्मा जग का!
सब से बडा भक्त या ज्ञानी.
या आँखो से दिखनेवाली
सब से बड़ी चीज दुनिया की!
क्योकि, मिटी है लहरे यदि, तो
क्या विचार भी कही मिट गये?
आँखो से यदि विश्व देखते,
तो मन से ब्रह्माण्ड नहीं क्या?
मेरे मन मे मिलने वाले,
मेरे मन के आसमान मे
खिलने वाले तारे है!
ये सपने मुझको प्यारे है!
इन सपनों को तुम रहने दो!

माघ शुक्ल त्रयोदशी

आज की यह चाँदनी,
यह चाँदनी भी, देख,
जहरीली हुई है!

किस हठीले होठ का पीकर जहर,
माघ की इस रात के पिछले पहर,
किन अभागे आँसुओं की ले लहर,
ढा रही हतभागिनी आफत, कहर!

शायद इसीसे पापिनी
संताप से उद्विग्न
यह, पीली हुई है!

जिन्दगी गुजरी खुशी में एक दिन,
और दिन-भर युद्ध मैं करता रहा;
पूछ तो, किसके लिये?
संसार कहता जोर से तेरे लिये—
तेरे लिये!

अनुरागिनी, दुश्मन बनी
तू भी अरी, क्या?
इस तरह जो चोर-सी पकड़ी गयी-सी
और शरमीली हुई है!

एक क्षण चौबीस घण्टों में अगर मै
प्यार कर लेता किसी को,
कौन-सा अपराध करता, बोल तो,
जिन्दगी के एक क्षण मे—एक क्षण
याद कर लेता किसी को,
क्या बिगड़ जाता कहो ? जो

तू नशीली रात - रानी,
हे रसीली,
रूप - गर्वीली हुई है !

जिस जवानी पर तुझे यों नाज है,
जानता हूँ, राज जो दिलके सभी;
जो मधुर सौन्दर्य तेरा आज है;
आज ही ढल जायगा,
ढल जायगी तेरी जवानी,
जिस तरह यह ढल रही है रात,
जिस तरह बरसात की यह
झूमती जाती रवानी !
बाढ़ का मुंहजोर पानी !

और तू क्या देखती ?
यह लाल चुनरी तो
अभी गीली हुई है !

हाथ धोकर क्यों किसी की जान लेने,
मौत - सी तू आज पीछे पड गयी है!
राह मे सब ओर सन्नाटा यहाँ है;
और अपनी जिद कि तू भी अड गयी है!
क्या न छोडेगी मुझे अभिमानिनी तू!
जायगी उठ क्या न दुनिया से भला?
मर्म में क्यो आग - सी जाती सुलग?
रात का चौथा पहर भी है ढला!
याद बिजली - सी कभी जाती चमक,
और मेरी जिन्दगी से ——
यो कभी क्या मौत का पहरा टला?
जिस तरह मै हूँ—अरी, उन्मादिनी!
डूब जा तू भी मरण के सिन्धु में;
क्योकि, मेरी साँस की
यह ग्रंथि सहसा
आज कुछ ढीली हुई है!

लोग कहते, तू भली है!
ज्यों चमेली की कली है!
और मै तो देखता हूँ, तू भयानक
नाग, सिनकोना – मिली
सुकुमार मिसरी की डली है!
क्या तुझे मैं पान कर जाऊँ?

आँख में तेरी उतर आऊँ ?
ओ नहीं, दुनिया नही अन्धी !
तू किसी का घर उजाला कर सकेगी;
तू किसी घर का अँधेरा हर सकेगी !
किन्तु, मेरा भी कभी क्या ?
जा कि जीवन में उषा अब आ रही है !
प्रेम की चिड़िया चहकती गा रही है !
जा, न तो जल जायगी तू;
मोम-सी जल जायगी तू !
तू जिसे चाहे, उसी के पास जा, मधु—
कामना में मुँह छिपाले !
चाँदनी, ओ चाँदनी ! सच कह रहा हूँ,
जिन्दगी मेरी प्रलय की धूप से ही,
आज चमकीली हुई है !

बिजली

गिरते गिरते भी आखिर बिजली गरज गयी !
यह वज्र-नाद जिसने भूमण्डल हिला दिया,
पृथ्वी के वक्षस्थल के तारों को, खींचा,
फिर जिसने छायानट से मिला दिया !

जानें, वह किस के इंगित से खिच कर, टूटी !
मेघों के माया-वन से सहसा छूटी !
नाच-नाच कर,
बचते-बचते भी आखिर बिजली फिसल गयी !
गोरी के पैरों के नीचे थी चिकनाई;
थी झूम रही सिर पर नवीन तरुणाई !
शायद जीवन में प्रथम बार था झाँका,
और कहीं शायद वह छैला भी था बाँका !
जब यौवन का पिक-कंठ बोल उठता है—
'कुहू-कुहू !'
तब पत्थर का दिल भी कहीं डोल उठता है !
झूम-झूम कर,
मिटते-मिटते भी आखिर बिजली चमक गयी !
बिजली को है ज्ञात कि क्षण भर हँसना है !
सदा झूलना है न मेघ के कन्धों पर,
इस क्षण-भंगुर जीवन के मणि को,
काँटों में, कीचड़ में, मल मे फँसना है !
वह हँसी और वह हँसी—इसलिये
और धँस गयी धरा के प्राणो में !
मरते-मरते भी बिजली आखिर विहँस गयी !
यदि इस प्रकार तुम विहँस सको, तो
विहँसूल प्रतिपल !

यदि इस प्रकार तुम खेल सको, तो
खेलो जी भर, झंझा के रथ पर,
अग्नि, धूम्र, उल्का के पथ पर!
यदि इस प्रकार का मरण मिले,
तो हे मोही मन, छोड़ो जीवन!
चलते - चलते भी बिजली आखिर तड़प गयी!

कितना अच्छा होता वह दिन

कितना अच्छा होता वह दिन,
जब तू मेरे पास न होती!
जब तू रहती मेरे आगे,
अथवा मेरे अगल - बगल में;
मै हो जाता, जैसे मछली
छटपट करती खौले जल में!
दम घुटने लगता है मेरा;
मानो, चलती साँस न होती!
तुझ से भी लगता है ज्यादा
अच्छा तेरी यादें करना;

तुझे देख कर यों जीने से
कहीं बेहतर तुझ पर मरना !
क्या तू भी मेरे पीछे यों
दुनिया से छुप-छुप कर रोती ?
इसीलिये तो मैं कहता हूँ,
जब तू दूर चली जाती है !
मेरे दिल की कली रोज
चुटकी से यों न मली जाती है !
फूट न जाती किस्मत मेरी,
टूट न जाता मन का मोती !
अच्छा है, तू पास नहीं है;
मेरा चित्त उदास नही है !
कह सकता है क्या कोई भी,
मेरे मुख पर हास नही है ?
यह तो तेरी ममता है, जो
रह-रह अपना धीरज खोती !

दो होते, तो

दो होते, तो किसी तरह
शायद यह एक दिया भी जाता !

दो होते, तो सम्भव था, मैं
करता तुझ को बन्धु, समर्पण !
किन्तु, खेद है, पाया मैंने,
मेरे पास एक ही है तन !

यह तन भी कैसा कि काँच के
टुकड़ों पर हो बिका हुआ है !
निराधार आकाश - महल - सा
महाशून्य में टिका हुआ है !

बहुत दिनों से मृत्यु - देवता का
अधिकार चला आता है !
इस पर उसकी ममता, मैत्री;
अविरल प्यार चला आता है !

दे दूँ आज किसी को कैसे !
यह जो बना पराया धन है !
मुझे खेद है बन्धु, करूँ क्या !
मेरे पास एक ही तन है !

× × ×

दो होते यदि, तो उन में से
शायद एक दिया भी जाता!
अपने लिये नहीं, तो कुछ दिन
तेरे लिये जिया भी जाता!

दो होते, तो सम्भव था, मैं
देता तुझ को बन्धु, निमन्त्रण!
किन्तु, खेद है, सच कहता हूँ,
मेरे पास एक ही है मन!

वह मन भी कैसा कि जगत से
उड़ा-उड़ा-सा फिरता है!
बिजली को भी छू आये
इस में इतनी अस्थिरता है!

निर्झर और नदी बन उपवन—
वन से जाता बहता है!
यह कब मेरा दुख सुनता है,
मेरे अधीन में रहता है?

सब कुछ खो कर भी राजा है;
पाकर सभी अकिंचन है!
मुझे खेद है, बन्धु, बड़ा-ही;
मेरे पास एक ही मन है!

× × ×

दो होते यदि, तो उनमे से
शायद एक दिया भी जाता!
किसी तरह चुपचाप अनिच्छित
विप का घूँट पिया भी जाता!

दो होते, तो सम्भव भी था
सौ - सौ घडियो मे परिवर्तन!
किन्तु, खेद है बन्धु, मिला जो,
मेरे पास एक ही है क्षण!

वह क्षण, जो बेसुध श्मशान के
निरानन्द मे सोया है!
इस विराट् पृथ्वी के कण-कण में
निमग्न है, खोया है!

उस क्षण को मेरी मस्ती ने
बाँधा है, अपनाया है;
प्राणो के बदले में जिस क्षण को
माँगा है, पाया है!

यह तो चाह रहा मिट जाना
तुझ में, तोड़ जगत् का बन्धन;
किन्तु, खेद है,—लाचारी है,
मेरे पास एक ही है क्षण!

× × ×

दो होते यदि, तो उन में से
शायद एक दिया भी जाता!
इस मजबूरी की हालत में
कुछ तो काम किया भी जाता!

दो होते, तो शायद मैं भी
होता तेरे सुख का कारण;
यह मेरा दुर्भाग्य कि सचमुच
मेरे पास एक ही जीवन!

दो बाँहें भी मिल कर आखिर
किसी एक को ही भर सकतीं!
दो आँखें भी हुईं, देख कर
किसी एक पर ही मर सकतीं!

इस पत्थर के दिल को लेगा
कौन भला विश्वास करेगा?
इस प्रचण्ड ज्वाला में आ क्या
कोई फूल निवास करेगा?

प्रभु के चरणों से ठुकराया
जो, क्या यह निर्माल्य नहीं है?
इस में गुरुता का अभाव-सा
और सहज चापल्य नहीं है?

बना हुआ है यह तो केवल—
केवल दो श्वासों का साधन!

यह मेरा दुर्भाग्य कि सचमुच
मेरे पास एक ही जीवन !

× × ×

दो होते यदि, शायद मैं भी
लेता कुछ तो उच्चारण कर !
किन्तु, खेद है, बन्धु करूँ क्या !
मेरे पास एक ही है स्वर !

इस स्वर को तू आदि कहे या
इसे मान ले तू पंचम !
सार्थक कहे, निरर्थक अथवा;
होता तनिक न गौरव कम !

फिर भी क्या यह मेरा स्वर है ?
मैं कह सकता हूँ अपना ?
जिसने दिया छीन भी सकता;
जैसा हो टूटा सपना !

वह स्वर भी, जो उलझा फिरता
है सितार के तारों से !
और कभी टकराता जा उस
पार वज्र - हुंकारों से !

राग - तान से रहित अकेला
यह तो अनमिल-सा अक्षर है !

निभे शास्त्र के नियम कहाँ से !
मेरे पास एक ही स्वर है !

× × ×

दो होती, तो आसानी से
कट जाती दोनों की रात;
मगर, करूँ क्या बन्धु, खेद है,
मेरे पास एक ही बात ।

जिसे बोलते—लिखते युग के
युग आये है, चले गये है !
फिर भी राज जिन्दगी के ये
नहीं पुराने, रोज नये है !

कई तरीको से, भेदो से,
वही चीज दुहरायी जाती !
और एक ही दुनिया उजडी
बारम्बार बसायी जाती !

जो भीतर है, बाहर भी है,
इसका नहीं बदलता रूप !
जैसे वन की खुली हवा है,
और खुली है दिन की धूप !

इच्छा तो होती है मेरी
मैं भी बनूँ अजस्र प्रपात !

मगर करूँ क्या ? बन्धु, विवश हूँ;
मेरे पास एक ही बात !

निर्बन्ध

मुझे बाँध सकतीं ये कब तक
जग की भौगोलिक सीमाएं ?

जैसे नदी निकल जाती है
लाँघ प्रान्त-वन-गिरि-घाटी को !
मेरा युग भी आज चला है
तोड़ पुरातन परिपाटी को !

मुझे घेर सकतीं ये कब तक
देशों की दुर्बल रेखाएं ?

पृथ्वी के कोने - कोने से
मानो, मुझे निमंत्रण आता;
सागर - पार, दूर अम्बर से
रह - रह कोई मुझे बुलाता ?

किन्हें न होतीं चाह कि मुझको
एक बार जीवन में पायें ?

कब बन्दी रह सका पुष्प का
सौरभ उसके हृदय - भवन में !
लगते ही प्रातः - समीर का
झोंका उड़ जाता वन - वन में !

मुझे बाध्य कर सकती हैं ये
कब तक सांसारिक ममताएं !

मेरे लिये समूची दुनिया
ही ज्यों मेरा प्यारा घर है !
घर - घर में आत्मीय बन्धु हैं;
मुझ से परिचित नगर-नगर है !

कण - कण को इच्छा होती है,
दो - क्षण मेरे साथ बितायें !

जिस दिन स्वय तोड मैं दूँगा
काल और दूरी का बन्धन,
द्वार खोल पिँजड़े का पंछी—
सा मैं उड़ जाऊँगा तत्क्षण;

दुनिया भर में फैल जाँयगी
मेरी आकुल बाहु - लताएं !

प्रवहमान

बह चला उधर ही, जिधर बहा!
कुछ देर बहा, कुछ दूर बहा;
फिर पता नहीं मैं किधर बहा!

मै तो ठहरा बहता पानी;
मेरी भी क्या नयी कहानी?
झरने की नाईं है, जैसे
क्षण भर रुकती नही जवानी!

मै ही कब जीवन - सरिता के
एक घाट पर रुका रहा!
बह चला उधर ही, जिधर बहा!

जैसे रथ की चपल पताका
रथ के पीछे भागी जाती;
मुझे छोड़ कर मेरी इच्छा
भी है आगे - आगे जाती!

तुम को हो विश्वास भले मत,
आँखों - देखा सत्य कहा!
बह चला उधर ही, जिधर बहा!

जिधर खिँचा मै, खिँचता आया;
जिधर उठा मै, उठता आया;

साथ दिये ये पैर जिधर ही,
मै निर्भय हो बढ़ता आया !

एक ववण्डर - सा अम्बर मे
धूल उड़ा छा गया, अहा !
वह चला उधर ही, जिधर वहा !

मै लहरो को झेल रहा हूँ;
मैं मौजो मे खेल रहा हूँ !
जरा मौत की मनहूसी को
जबरन पीछे ठेल रहा हूँ !

कहो, कौन व्यवहार तुम्हारा
मैने कव हँस कर न सहा ?
वह चला उधर ही, जिधर वहा !

एकलव्य

एकलव्य, अपनी प्रतिभा से
तुमने क्या कर दिया न सिद्ध ?
बिना किसी गुरु के भी अर्जुन--
सा हो सकता वीर प्रसिद्ध !

तुझ मे वह पौरुष था, द्रोण—
चार्य बनाया पत्थर को !
पृथ्वी को आश्चर्य - चकित कर
विवश झुकाया पत्थर को !

तूने यह कर दिया प्रमाणित,
निस्सन्देह, व्यर्थ गुरु - भक्ति;
निष्फल गुरु - प्रसाद या सेवा;
जो कुछ है, वह इच्छा - शक्ति !

इच्छा - शक्ति प्रबल है यदि, तो
नही असम्भव कोई कार्य ।
नहीं ज्ञान के लिये कहीं
गुरु की आवश्यकता अनिवार्य !

एकलव्य ! जा सकता कहा न
क्या यह गुरुता से विद्रोह ?
वह गुरु, अर्जुन के प्रति जिस की
थी विशेष ममता, सम्मोह !

जीवन में की एक बार ही
गलती एक मगर तू ने ।
काट दक्षिणा में उँगली ही
दी होती न अगर तू ने—

तो हे वीर, महाभारत का
रूप कदाचित् होता अन्य !

गुरु से नहीं किरात, स्वयं ही
तू अपनी महिमा से धन्य !

कुम्भकार

कुम्भकार ने कितने श्रम से
युग - घट का निर्माण किया !
'नहीं, नहीं !' उत्पाती बालक ने
उसका अपमान किया !

फेंका उसे उठा कर धरती पर,
क्षण - भर में तोड़ दिया;
लेकिन, क्या निर्माता ने
निर्माण - कार्य को छोड़ दिया ?

वह झुँझलाये, तो पल - भर में
हो सकता दिग्चक्र विनष्ट;
पर, शिशु की चिन्ता से होगा
कितना उसे मानसिक कष्ट ?

वह अबोध है, वह नटखट है;
एक बार ले लेता है !
बालक ही तो, फौरन् उस को
नापसन्द कर देता है !

जानें, अब तक यों - ही उसने
फोड़े कितने मंगल - घट;
जानें. कबतक उसे होश होगा!
सँभलेगा वह नटखट!

फिर भी कुम्भकार का धीरज
स्तुत्य, न वह घबड़ाता है;
और, एक के बाद एक नित
नया बनाता जाता है!

युग पर युग बीते हैं, घट पर
घट हैं बने भव्य, निर्दोष;
आह, कभी कुछ भी तो होता
उत्पाती शिशु को सन्तोष!

पुकार

ओ धरा, पुकार हुई तेरी;
मैं उतर स्वर्ग से आया!

मुझे देखने को शायद ये
तेरी आँखें तरस रही थीं;

मिलनातुर थी, सावन - भादो
सी युग-युग से बरस रही थी !
मैने तेरा स्वर पहिचाना,
मै मिलने को अकुलाया !

जो कुछ तू ने दिया, हृदय है
चिर - कृतज्ञ, चिर-आभारी है !
दे न सका बदले में कुछ भी,
यह तो मेरी लाचारी है !
तेरे लिये अमृत के घट को
मैने पैरों से ठुकराया !

तेरे मुख पर हँसी देख कर
आज स्वर्ग को भूल गया हूँ !
अपना नन्दन छोड़, पूछ मत,
तेरे वन में भूल गया हूँ !
मुझे बाँध रक्खेगी कब तक
जानें, यह तेरी माया ?

गधा

मुझे इसी का एक दुःख है,
तू विद्रोह न क्यों करता ?

मुझको इसका दुःख नहीं, क्यो
तुझे न सींग हुई सर पर ?
हुक्म मानने से धोबी का
तू इनकार न क्यों करता ?
मुझे न इसका खेद कि तुझ को
हुई न क्यो पैनी नाखून ?
गोली-लगे बाघ-सा ही तू
हाहाकार न क्यो करता ?
मुझे नही अफसोस, तुझे क्यों
हुये नहीं जहरीले दाँत ?
कम से कम तू भला साँप-सा
भी फुत्कार न क्यो करता ?
यों कब तक अपने मालिक का
बोझा ढोता जायेगा ?
और पीठ पर नंगी कब तक
यों तू कोड़े खायेगा ?
तुझसे है न किसीको भय क्या ?
तू सचमुच इतना मूरख ?
घर से घाट, घाट से घर, तू
यों ही मारा करता झख !
इतना तो था पता कि जानवर
तू है—तेरा नाम गधा !

लेकिन, था मालूम न, तू है
इतना सीधा और सधा !
मुँह से भी तो एक वार तू
अस्वीकार न क्यो करता !
ज्यादा गुनहगार है शोषक
से शोषित होने वाला !
गुनहगार है ज्यादा शासक
से शासित होने वाला !
इतना क्यों दयनीय वना तू ?
क्या भूखा है ? नगा है ?
तू अपराधी है—दोषी है;
बहती उल्टो गगा है !
यों सहता जायेगा कब तक ?
तू प्रतिकार न क्यो करता ?

भेड़ियाधसान

ये मेरी कविताए,
आगे - पीछे, दायें - बाये,
छोटी - बड़ी,
साँवली - गोरी,

दुबली - मोटी,
रंग - विरंगी,
एक दूसरे के पीछे जो,
मेरी आँखो के इंगित पर,
बढ़ी चली आती है
आँख मूँद कर
नियम - रहित
क्रम - हीन, अशृङ्खल.
भ्रष्ट - पंक्ति
अनपवाद,
चुपचाप, झुकाये सिर बेचारी
जैसे भेड़ें,
झुण्ड के झुण्ड।

हे भुवन-मोहिनी मा पृथिवी

हे भुवन - मोहिनी मा पृथिवी,
मैं तुझे छोड़ कर उठ न सका !
तेरी मिट्टी में मेरा मन,
जो एक बार खोया यह मन;

वह अंकुर भी दे सका नहीं,
मै उसे फोड़ कर उठ न सका।
तेरी बाँहो में ममतामय,
जो एक बार यह बँधा हृदय;
तेरे ममत्व की कारा को
फिर कभी तोड़ कर उठ न सका
जो कभी उड़ा भी तो क्षण-भर,
मैं ललचा कर नभ की छवि पर;
तू ने यो खींच लिया मुझ को,
फिर पंख जोड़ कर उठ न सका!
मुझ से है जकड़ गया कण-कण,
है लिपट गया मुझ से क्षण-क्षण;
तेरे अंचल में बँधा हुआ
मै तुझे छोड़ कर उठ न सका!

तुम मिलो

तुम मिलो ऐसे न, जैसे आग में पानी!
तुम मिलो जैसे मिली है व्योम में वाणी!
तुम मिलो ऐसे न, जैसे रूप से छाया!
तुम मिलो, जैसे मिली है प्राण से काया!

तुम मिलो मत इस तरह, ज्यों मेघ में बिजली !
तुम घुलो मिल इस तरह, ज्यों दूध मे मिसरी !
मत मिलो, तुम मत मिलो, ज्यों ताप से पारा !
तुम मिलो, जैसे मिली है सिन्धु में धारा !
व्यर्थ है वह मिलन, जिसका अंत हो विच्छेद;
प्रेम वह क्या, मात्र तिल भी रह गया यदि भेद !
तुम मिलो, घुल मिल रहो, एकान्त-एकाकार !
भूमि मे ज्यों गन्ध, जल में रस, हृदय में प्यार !

मैं तुम्हारा हूॅ, तुम्हारा !

मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा ।
लाख ये कमजोरियाँ रहते हुए भी,
लाख लुक - छिप चोरियाँ रहते हुए भी,
मै चला जाता कही हूँ भूल कर जो,
प्यार कर लेता कभी मैं जो किसी को,
फिर न मिलती जिन्दगी - भर वह दुबारा ।
मैं तुम्हारा हूॅ, तुम्हारा ।
एक क्षण के वास्ते यदि मैं गया हूॅ कुछ बहक ही,
तो, तुम्हारी याद में आई कहीं ज्यादा चमक ही,

रूप यह जो था कभी, अब और ही कुछ खिल उठा है।
आज यह पाषाण का मस्तिष्क भी जो हिल उठा है।
और पहले यों कभी शायद रहा हो जो न प्यारा।
मै तुम्हारा हूँ, तुम्हारा।

जिन्दगी में तुम समाती जा रही हो,
रोज कुछ - कुछ गुनगुनाती जा रही हो।
उठ रहा हूँ, आज जो तूफान - सा मैं,
और तुम बिजली गिराती जा रही हो।
क्या न इसमें है तुम्हारे हाथ का कोई इशारा!
मै तुम्हारा हूँ, तुम्हारा।

मै किसीका हो सकूँगा क्या कभी अपना!
बन सकूँगा क्या किसीकी आँख का सपना?
तुम लगी हो साथ मेरे जन्म से, माया!
धूप है जब तक, न तब तक जायगी छाया!
मिल सके मेरे हृदय में यदि तुम्हें तरु का सहारा,
मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा।

मैं गया हूँ तो रुकी है दृष्टि मेरी भी कहीं क्या?
जो मुझे झुकने न दे, पुरुषत्व वह मुझ मे नहीं क्या!
दिल अगर तोडा किसीका, तो उमड़ता प्यार भी था;
राज-पथ पर रोक लूँ, मुझको मिला अधिकार भी था।
गीत गाती तुम चली हो, मैं बजाता एकतारा!
मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा।

बहुरूपिणी

तू ही तो बस गई हृदय में कविता बनकर !
मैं तेरा ऋण किस प्रकार स्वीकार करूँ ?
किन शब्दो मे ? किन अर्थों में ?
व्यक्त हृदय का प्यार करूँ ?

छंदो से जिसके शरीर की
की हो नव - रस - युत रचना
उसे देखकर ही अवाक् हूँ
वाणी मेरी निर्वचना !

जिसकी आँखों से आँसू का
टपका - टपका, बूंद - बूंद में
मधवा पान किया हो, कैसे
उसे नही सत्कार करूँ ?

तू ही तो बज गई हाथ मे वीणा बनकर !

स्वर है अनेक, पर कंठ एक
है; और रागिनी भी है एक
और स्वरों मे तन्मयता है
और कहीं यदि अतिशयता है

यह जो तेरा गीत उमड़ता
आता है मेरे जीवन में
घन-माला जैसे अम्बर में
मधु-वैभव जैसे उपवन में

तो अक्षम्य अपराध न मेरा
मै प्रवाह में बह - बह जाता
यह भी तेरा ही चमत्कार है
जो मेरी उँगलियाँ सधी हैं
गीतों की कोमल सितार है

तू ही तो आ गई कंठ में माला बनकर '
क्या उस दिन तेरे चरणों में मैं न झुका था ?
क्या उस दिन चलते - चलते पथ में

थोड़ा - सा भी मै न रुका था ?

मै कैसे कह दूँ, उस माला
में फूलों की गंध नही है ?
अगर मान लो, कह भी दूँ, तो
दुनिया इतनी अंध नही है !

क्या उस दिन मैने अपने को
धन्य न माना था ?
क्या उस दिन भी सच-सच मैने
अपने को पहचाना था ?

तू ही रम गई चित्त मे माया बनकर !
यह जो कौतुक - सी करती
बिजली-सी तृष्णा-सी, पारा-सी
महाक्षोभ - सी, चुम्बक - सी, धारा - सी
मेरे सम्मुख, मेरी ही आँखो में और धूल भरती

भाँति-भाँति का रूप दिखाकर
मेरे मन की सुध-बुध हरती
जब करती हुंकार हृदय में
अहंकार करती आत्मा

लुटा हुआ-सा, कुछ पागल-सा
खोया - खोया - सा परमात्मा
मुझे ढूँढता फिरता है, पर
पता नहीं पाता है जग में

तू ही तो खा गई अंत में काली बनकर !
जिस दिन तूने मेरे दृग की ज्योति छीनकर
अकस्मात् जल - हीन मीन कर
युद्धस्थल मे खींच मुझे ललकारा था

और मौत को तूने मेरी
चिर - अविलम्ब पुकारा था
क्या उस दिन मेरी आँखो से
छलक अश्रु भी आए थे ?

बोल, बोल ! ये प्राण नही क्या
उस दिन भी अकुलाए थे ?
प्रथम बार ज्यों तुझे देखकर

अब तक भी तो बना हुआ मै वही मार्ग का पत्थर !

मैं तुम्हें यदि भूल भी जाऊँ

मै तुम्हे यदि भूल भी जाऊँ किसी दिन,
एक दिन वह भूल मै सकता नही !
एक दिन बहुमूल्य जो
तुमने दिया था जिन्दगीका,
बल्लभी, अपनी खुशी से।
आभार उसका मानता हूँ !
क्योंकि, वह प्रत्येक दिन
आया हमारी जिन्दगी में
एक नूतन स्वर्ग बनकर !
थे जहॉ, जब—
स्वर्ग मे बस, सिर्फ दो ही।
और कोई भी नही।
मै किसी दिन दूसरी दुनिया बसा लूँ,
एक दिन वह भूल मैं सकता नही।
एक दिन भी इस तरहका
जिन्दगीमें जब कभी आता,
सदा स्मरणीय-सा होकर।
याद जिसकी है अमिट,
चट्टान पर मानों लकीर खिची हुई।
एक दिन क्या, एक क्षण भी
"साधुका सत्संग" यदि मिल जाय,

तो कोटिशः अपराध हो जाते हरण।
तुम ने जिसे गौरव दिया,
आनन्द, यौवन, सुख दिया;
सुन्दर बनाया।
श्वास से जीवित किया,
वह एक दिन केवल,
मै विछुड़ जाऊँ किसी दिन सर्वदा को,
एक दिन वह भूल मैं सकता नहीं।

मैं करूँ क्या क्रोध तुम पर

मै करूँ क्या क्रोध तुम पर?
मै करूँ यदि क्रोध,
तो यह स्वर्ग जो तेरा,
एक क्षण भी क्या
ठहर सकता धरापर!
नींव से पूरी इमारत ही
उठेगी डोल थर-थर।
और यह हो जायगा—
चमगीदड़ों का बस, बसेरा।

क्या उठाऊँ शस्त्र तुम पर ?

मै उठाऊँ शस्त्र तो,

ससार में है कौन ?

एक क्षण भी सामने

मेरे खड़ा रह जाय ?

एक क्षण मेरा विरोधी

बन अड़ा रह जाय ?

विश्व के चापल्य पर

मै स्तब्ध हूँ, मै मौन ।

क्या लड़ूँ मै आज तुम से ?

पुरुष जो कर्त्ता,

उसे कब कर्म से अवकाश ?

वह चला जाता बढा

कर्त्तव्य निज करता हुआ,

आप ही से वह स्वयं

अलमस्त-सा लड़ता हुआ,

वह करे क्या वार उस पर,

मृत्यु का जो ग्रास !

जब-जब मैं हूँ कुछ भी बोला

जब - जब मै हूँ कुछ भी बोला !
बदल गयी है तेवर दुनिया—
भर की, है सिहासन डोला !

जब - जब आगे पैर बढाया,
पीछे गया खीच कर लाया;
मेरी आँखों के आगे ही
फैला दी है अपनी माया !

बारम्बार मुझे ललकारा—
'खबरदार, जो मुँह फिर खोला !'

जब - जब मुझको मिला सहारा,
किया किसीकी तरफ इशारा;
जिन्दा ही खूनी पंजों से
गया मौत के घाट उतारा !

मैं चुप भी हो जाऊँ, लेकिन,
मेरा मन क्या इतना भोला ?

तू कहता जुबान को सी लूँ !
कुछ दिन किसी तरह मै जी लूँ !
लेकिन, मन का तार न छेड़ूँ;
यों - ही जहर उठा कर पी लूँ !

मुट्ठी में क्या बाँध सकेगा ।
जलता हुआ आग का शोला ?

तुझ से प्यार माँगता कौन

इतना कौन प्यार का प्यासा ?
तुझसे प्यार माँगता कौन ?

तुझसे माँगे वह, जो भूखों
मरता है, भिखमगा है;
तेरे आगे हाथ पसारे,
मुफलिस है--जो नगा है!

देकर जिसको छीन कभी ले,
वह अधिकार माँगता कौन ?

यहाँ आप ही फूल हजारों
हँसते है—नित खिलते हैं;
खुला खजाना सोने का,
वे माँगे मोती मिलते है!

इतना सस्ता, इतना छोटा-सा
उपहार माँगता कौन ?

जो खुद ही राजा है, जिसकी
जूठन पर दुनिया पलती;
क्या उसकी इज्जत बाजारों में
यों-ही लुटती पलती ?

आग लगा दे तू जिसमें,
ऐसा ससार माँगता कौन ?

मस्ती

तुम मेरी मस्ती तो देखो !
तुम मेरी मस्ती तो देखो !

पत्थर से टकराने वाली
तुम मेरी हस्ती तो देखो !
मचल रहे अरमान हजारों
जिसमें, वह बस्ती तो देखो !

तुम मेरी मस्ती तो देखो !
तुम मेरी मस्ती तो देखो !

मैं आँधी बनकर जब उठता,
बिजली बन जाती है मस्ती;
मैं वसन्त - सा घूम मचाता,
कोयल बन गाती है मस्ती !

इतनी मस्ती, इतनी मस्ती,
नदी - सिन्धु छलके - से पडते;
शिखर - शिखर जिसके प्रकाश से
जग - जगमग झलके - से पडते !

यह है हवा कि जिसको यदि तुम
बाँधो भी तो बाँध न पाओ;
यह है वह धारा कि जिसे तुम
काटो भी तो काट न पाओ !

यह मस्ती है आग कि जिससे
यदि खेलो, तो जल-जल जाओ !
यह मस्ती है घटा कि बरसे
जो झम-झम, तो गल-गल जाओ !
यह मस्ती नागिनी, कभी जो
ऐंठ जरा - सी भी जाती है !
सच तो, थोडी देर मौत को
भी कुछ दहशत हो जाती है !

इस मस्ती को पा सकते हो
क्या तुम अंगूरी हाला में ?
इस मस्ती को छू सकते हो
क्या होठो से मधु प्याला में ?
यह मस्ती भी बिकती है क्या
दूकानों में, बाजारों में ?
यह मस्ती भी मिलती है क्या
शशि में, सूरज में, तारो में ?

यह मस्ती देखी है तुमने
बोलो, किस तरुणी आँखों में ?
सच बतलाओ, इस मस्ती को
पाया क्या तुमने लाखों में ?

इतनी मस्ती, इतनी मस्ती,

मैं बहका - बहका जाता हूँ!
कुछ का कुछ हूँ सुन लेता मैं,
कुछ का कुछ कहता जाता हूँ!

पड़ी बेड़ियाँ है पैरों में,
हाथों में भारी हथकड़ियाँ!
फिर भी आठो पहर खुशी की
पहल - पहल, मगल की घड़ियाँ!

दिन भागा जाता है जल्दी,
छोटी होती जातीं रातें;
इतना है आनन्द कि मुँह की
मुँह में ही रह जाती बाते!

जब आती है मौज, किसीकी
मैं तस्वीर सजा लेता हूँ!
जब उमङ्ग उठती है, अपनी
ही जजीर बजा लेता हूँ!

जिस मतवाले ने यह मस्ती
दी मुझको — आबाद रहे वह!
इस मस्ती मे बाँध मुझे
रखनेवाला आजाद रहे वह!

आँधी

उस दिन आँधी आयी थी
थर - थर करती,
धूल - भरी,
उस दिन अँधियाली छायी थी !
तड़-तड़-तड़ मेघों का गर्जन,
भीम - नाद !
घुआँधार वर्षा,
बिजली का टूटना कड़क कर !
महासिन्धु का हाहाकार !
हड़-हड़-हड़, झड़-झड़-झड़,
पीपल की भारी शाखाएं,
ताड़ों के फैले पत्ते;
दिन में ही घन - अन्धकार
छाया अपार !
सूरज-तारे-चाँद, कहीं कुछ—
कुछ भी नहीं कहीं पर !
मुट्ठी - भर गर्द सिर्फ;
आँखों में न रोशनी;
दुनिया ऐंठ साँप - सी
बल खायी,
अँगड़ायी थी !

चिड़ियों के खोते उजड़े,
उपवन उजड़ा,
घर भी उजड़ा,
गुजरा पथ से एक आदमी,
उसने देखा, एक किनारे
नन्हा-सा बच्चा सोया था।
जानें, मृत या जीवित ?

आओ, मेरे आगे बैठो

आओ, मेरे आगे बैठो !
जैसे बैठी होती काली
काली नागिन, दो जिह्वा-वाली,
एक हाथ धरती से ऊपर,
ऐंठ गयी हो जो बल खाकर,
मार कुण्डली, फन फुत्कारे,
अब काटे, अब ठोकर मारे,
देखो, निर्निमेष तुम मुझको-
देख सको जब तक,
यों अपलक,
मेरे आँखों पर, गालों पर

अपनी जलती साँसे छोड़ो।
मुझसे अपनी आँख मिलाओ,
मेरे दिलमें विष बरसाओ;
उगलो जहर, होठ पर
रखदो, रखदो, कहता हूँ मै,
जीभ खून की प्यासी अपनी।

आओ, बैठो मेरे आगे!
जैसे बैठी होती बाघिन,
बहुत दिनो की भूखी बाघिन,
लाल आँख, सूरत भयावनी,
जैसे हो प्रत्यक्ष मृत्यु,
लगता हो,
अब झपटे, मानो, अब निगले!
फिर देखो, तुम मेरी हालत—
मैं क्या करता हूँ तत्क्षण?
मैं तुम्हें देखता रह जाता हूँ,
और जरा-सा हँस देता हूँ;
और, और··मत पूछो, इसके
बाद कि क्या होता है?····
यह क्या है?
क्या भय है?
अथवा आत्म-समर्पण है?

यह कैसा दर्शन है?
आत्म-घात है?
यह किस जीवन का रहस्य है?
प्रेम-घृणा है? कुछ भी तो अवश्य है!
ओ दुनिया, पूछो उस दुश्मन से,
बाघिन, काली नागिन से—
मुझसे क्या तुम पूछ रहे हो?

अभिमानी

तुम से ओ अभिमानी, बोलो!
किसने बदला नहीं चुकाया?
बड़ा गर्व था तुमको अपने
धर्म, देवता औ ईश्वर पर!
शायद यह भी मान लिया था,
कौन विश्व मे तुम से बढ कर!
और वही आगया एक दिन,
तुमने जिसे अनार्य कहा था!
तुम्हें पराजित करने में वह
सफल रहा, कृतकार्य रहा था!

चूर हुई खोपड़ी तुम्हारे
ईश्वर की, फिर परमेश्वर की !
टूटी मठ, मन्दिर भी टूटा,
पत्थर की छाती भी दरकी !
लोक और परलोक तुम्हारे
दोनो लूटे गये जहाँ पर,
कहाँ तुम्हारा पौरुष था उस
रोज ? तुम्हारा धर्म कहाँ पर ?

तुम से ओ अभिमानी बोलो !
किसने बदला नही चुकाया ?

बड़ा नाज था तुमको अपनी
आजादी का औ ताकत का !
किया प्रचार समस्त जगत में
खुल कर तुमने अपने मत का !
'ओ गुलाम !' कह किन्तु घृणा से
तुमने जिसको कभी पुकारा,
क्या न उसीने कहो, मौत के
उस दिन, तुमको घाट उतारा ?

पैरों में है पड़ा बेड़ियाँ ;
हाथ कसे है हथकड़ियों से !
पर, मीना बाजार लगा है ;

व्योम पटा है फुलझड़ियों से !
तुम करते हँस-हँस कर बातें,
तो मेरे दिल मे है आता,
जैसे पहन फूल की माला
बलि का कोई बकरा जाता !

मैं तुमको कैसे समझाऊँ ?
मैं तुमको क्या-क्या समझाऊँ ?
दिल में कैसी आग सुलगती,
धुआँ उठे, तब तो दिखलाऊँ !

'अहं-अनलहक' के नारों से
मस्त हुए उस दिन तुम ऐसे,
दिल्ली की शाही गद्दी पर
तुगलक खाँ बैठा हो जैसे !

क्या उस दिन आया था दौड़ !
जन्नत से भगवान् तुम्हारा ?
बोलो, बोलो, ओ अभिमानी !
क्या इतना अभिमान तुम्हारा ?

लेकिन, अब जो युग आवेगा,
टाल सकोगे दुश्मन कह कर
तुम न उसे ! वह तुम्हें पकड़ ही
लेगा स्वय सामने बढ कर !

नत होगे तुम उसके आगे,
और टेक दोगे तुम घुटने !
वर्ना लापरवाह ! तुम्हारी
साँस लगेगी क्षण में घुटने !

तुम हो इस जिल्लत के कारण,
अभिमानी, ओ उत्तरदायी !
अरे पहरुए, तुम चूके हो
चौकी से, सो रात बितायी !
तुमने भाई को मारा है,
और पिता को जहर दिया है !
तुमने इस मिट्टी के प्रति ओ,
दारुण अत्याचार किया है !

घात किया विश्वास, एकता
का आया था जब - जब मौका !
बना दिया जीवन को मानो,
सागर में कागज की नौका !

ओ अभिमानी, पृथ्वी से भी
दूर कहीं जो बन्धु तुम्हारा
आवेगा जब कभी, उसे क्या
मिल जायेगा तो न सहारा ?

बन्धन

ओ मेरी दुनिया, बाँधो !
बाँधो कस कर मुझको
तुम अपने कठोर बन्धन में
मै उड़ता जाता हूँ—

उडता जाता नील गगन मे !
अगर नहीं बाँधोगे, मुझको
निःसशय खो दोगे !
मेरी किस्मत पर उस दिन
क्या यों-ही रो दोगे ?

मुझको रक्खो पिंजडे में तुम,
मेरे लिये बनाओ जाल;
मुझको तुम उलझा कर रक्खो,
मुझको दो उलझन में डाल !

फँसा रहूँ जिसमें आजीवन;
इतना मुझे छिपा कर रक्खो,
मुझे न कोई देख सके, यों
मुझ पर कडा नियन्त्रण रक्खो !

रक्खो मुझे कृपण के धन-सा
वर्ना, हो जायेगी चोरी।

ओ दुनिया, वर्ना, आ कोई
छीन तुम्हारे हाथों से ले
जायेगा मुझको बरजोरी !

दो मुझको बेडियाँ, और
मेरे हाथो मे कड़ियाँ दो ;

कैदी मुझे बना कर रक्खो ;
तुम निगरानी मुझ पर रक्खो !

चोरी से, छिप कर, जानें कब,
कहाँ तुम्हारी नजर बचा कर,
और आँख मे धूल झोंक कर !

मै हो जाता हूँ ओझल !
छवि का प्यासा, मै चचल !
श्रावण-घन में,

रिमझिम-रिमझिम वर्षानिल में,
महासिन्धु के नील - सलिल में,
जानें, कब, किस ऋतु में, किस दिन

उड़ जाऊँगा प्रात-स्वप्न-सा
मधु के वन में !

देखो-देखो, अद्यावधि मैं
भागा जाता हूँ छूटा——

छूट तुम्हारे हाथों से !
क्या तुमको अफसोस नहीं कुछ ?
ओ दुनिया, सच पूछा तो,
मुझको अपने खोने का——
है उतना गम नहीं कि जितना
दुःख तुम्हारे रोने का !
क्यों कि, तुम्हारा ही हूँ, जो कुछ !

मुझ पर बैठा दो पहरा !
बाँधो मेरे जीवन को, इस
जीवन के कण-कण को,
क्षण-क्षण को बाँधो !

रेशम की डोरी से अथवा
लोहे की जंजीरों से !
चाहे, जिससे बाँधो, लेकिन,

मुझको बाँधो कस कर !
विरस, विवश कर !

जिससे भाग न सकूँ——
उड़ न सकूँ मैं तुम्हें छोड़ कर !
रक्खो तुम अपने शासन में;

देख सकोगी क्या तुम इसको ?

क्या इसको सह सकती हो ?
कर सकती बर्दाश्त कि, देखो—
मै स्वच्छन्द हुआ जाता हूँ !

अनुशासन से हीन, निरंकुश,
मुक्तानन्द हुआ जाता हूँ !
यह भी क्या कोई जीवन है ?
और तुम्हारे कथित विचारो के प्रतिकूल !
और तुम्हारे आदर्शों को भूल !
और तुम्हारा ठुकरा कर इतिहास,
जाति तुम्हारा, धर्म तुम्हारा,
और तुम्हारा वास !

मै उस ओर बढ़ा जाता हूँ—
जो है, सच पूछो तो,
कही तुम्हारी इस दुनिया से
ज्यादा विस्तृत, अधिक विशाल !
अधिक दूर तक, अधिक परिधि में
घेर लिया है जिसने काल !

और अगर मै एक क्षुद्र
सीमा को तज कर,
जो बढता हूँ,
तो क्या करता हूँ अपराध !

फिर भी मोह तुम्हारा
कहता है, रो-रो कहता है,
सोचो तो अपने मन में।
ओ दुनिया, ओ मेरी दुनिया!
बाँधो तुम मुझको बन्धन में

बाँहों की छाया कर दो!
फूलों से अंचल भर दो!
बन्धन ही में मुक्ति लाभकर

सकूँ कभी, मुझको वर दो!
एक बात यह और आखिरी,
जीने दो, चलने दो साँसें!
मै तो लड़नेवाला ठहरा,
एक सिपाही;

मैं तो चलनेवाला राही!
मुझको यह कहने की हिम्मत
नहीं की मंजिल पा जाऊँगा,
और जीत जाऊँगा रण में!

बाँध सको, तो बाँधो मुझको
ओ दुनिया कस कर बन्धन में!

द्रष्टा

मैं तो द्रष्टा - द्रष्टा केवल !
तुम्हें देखने को ही इतना
विह्वल हूँ, व्याकुल हूँ, चपल !

हाट कही बाजार लगा है ;
सोने का ससार जगा है।
कहीं भीड़ है , कहीं शोर है ;
जमघट है , कल-विकलरोर है !

इसे देखता जाता हूँ मैं ;
घूम रहा हूँ चौराहो से !
मिलता हूँ अपने ही जैसे
अलमस्तों—लापरवाहो से !

बहुत हुआ, तो जरा बोल-हँस
लिया-कहीं पर रुककर पलभर !
अगर कही दिल मचल गया तो
पटक दिया उसको पत्थर पर !

मेरे हाथों में कूची है ,
मैं अंकित करता जाता हूँ !
मेरे हाथों मे सितार है ,
मैं गुंजन भरता जाता हूँ !

मै किसको देखूँ, क्या देखूँ ?
किसे न देखूँ प्यार करूँ मैं ?
किसे सरा हूँ ? किसपर रीझूँ ?
किसे नही सत्कार करूँ मै ?

हास-अश्रु दोनों मिलते है,
मै चुपचाप चला जाता हूँ ;
शोक-हर्ष दोनो मिलते है,
मै सवेग निकल जाता हूँ !

काँटों में मै फसूँ, फूल से
उलझूँ, होता असर नहीं है !
कौन चाहता ? कौन नहीं ?
इसकी भी मुझको खबर नहीं है !

हे सुन्दर, हे चिर-सुन्दर हे !
मुझमें वह उच्छ्वास कहाँ है ?
रूप तुम्हारा क्षुद्र चित्त मे
समा सके, अवकाश कहाँ है ?

मै देखूँ - औ तुम्हे देख कर
क्षण-भर ठिठक खडा रह जाऊँ !
मै देखूँ - औ तुम्हे देख कर
थोडी देर मुग्ध बह जाऊँ !

मै देखूँ - औ तुम्हे देखता
हो आजीवन मै रह जाऊँ !
जो देखूँ, यो-ही दुनिया को
मैं अपने अनुभव कह पाऊँ !

बस, क्षण - भर, क्षण-भर ! फिर इसके
बाद कदम आगे बढ़ जाये !
मैं पहुँचूँ उस देश, जहाँ फिर
कभी तुम्हारी याद न आये !

इसके बाद-बाद इसके है ;
अन्ध-कूप, हिम-गर्त्त भयानक !
और वहाँ पाओगे मुझको
अपने चरणो में नत-मस्तक !

मैं स्रष्टा हूँ जहाँ, द्विधा में
वहाँ विधाता भी पड़ जाता !
ध्वस पुरातन को कर, प्रतिक्षण
मैं नवीन ससार बनाता !

मैं स्रष्टा अपनी आत्मा का,
नव-निर्माण करूँगा अपना !
पृथ्वी पर प्रतिफलित करूँगा
मै अभिशप्त स्वर्ग का सपना !

सृजन करूँगा नूतन जीवन ;
उसमें नूतन रंग भरूँगा !
नव - यौवन में नया रक्त, मैं
उसे सतेज - सशक्त करूँगा !

ओ द्रष्टा, देखा है तुमने
आँधी-बिजली झंझा-घन को !
ओ स्रष्टा, इस असमंजस में
भूल न जाना अपने प्रण को !